International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

वाल्मीकि रामायण में दर्शन की प्रांसागिकता

डॉ० राकेश कुमार
गाँव – रुड़की (रोहतक)

शोध–आलेख सारः

''रामायण'' यह शब्द 'राम' एवं आयन दो शब्दों से बना है, जिनका अर्थ है, राम के जीवन चरित्र से सम्बन्धित और आयन का मतलब है चौबीस हजार अर्थात् राम के जीवन, व्यवहारकाल, प्रशासन, धर्म एवं दर्शन से जुड़े हुए चौबीस हजार श्लोकों का संग्रह। जब वैदिक ज्ञान, सिद्धान्त एवं विचारों को समझना आम जनमानस की पहुँच से परे हो गया था तो वैदिक धर्म एवं दर्शन को सरल एवं सुबोध तरीके से लोगों तक पहुँचाने के लिए प्रचेता पुत्र महर्षि वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य की रचना की। कहा जाता है कि महर्षि वाल्मीकि जब प्रातः काल तमसा नदी पर भ्रमण, स्नान आदि के लिए गए तभी एक व्याध (शिकारी) ने क्रौञ्च पक्षियों के जोड़े में नर कौञ्च पक्षी को मार दिया, तत्क्षण मादा पक्षी के करुण क्रन्दन से क्षुब्ध होकर महाकवि महर्षि वाल्मीकि ने इस करुण रस प्रधान महाकाव्य की रचना की जो संसार का आदि काव्य बन गया। यथा –

''मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।''[1]

मूल शब्दः

क्षुब्ध, कर्त्तव्यनिष्ठा, बौद्धिक, अनुस्यूत, युगपुरुष, नियति, कालक्रम, उत्पत्ति–विनाश, पावन, सलिल, वध, जिज्ञासा, क्षणभंगुर, महाकाव्य, अवधारणा।

भूमिकाः

रामायण भारत वर्ष का धार्मिक, राजनैतिक, कर्त्तव्यनिष्ठा से परिपूर्ण, वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक एवं संतप्त मानव जीवन को सुगम, सरल नैतिक, कर्त्तव्यनिष्ठ, न्यायपूर्ण एवं दार्शनिक जीवन मूल्य प्रदान करने वाला है। रामायण मानव जीवन को

समाज की मुख्यधारा से जोड़ने वाला ग्रंथ है परन्तु कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ आपूर्ति के लिए मूल रामायण महाकाव्य में फेर बदल कर दिया है। अतः हमें उन बातों का अनुकरण न करके इस महाकाव्य के अच्छे पक्षों को ही ग्रहण करना चाहिए। हर आदमी का अपना–अपना दृष्टिकोण होता है। वह प्रत्येक क्षण कुछ–न–कुछ मानसिक, बौद्धिक, शारीरिक चेष्टायें करता रहता है, और चिन्तन करता रहता है, यहीं से दर्शन का जन्म होता है।

महर्षि वाल्मीकि की पावन कृति रामायण में धर्म एवं दर्शन को परस्पर अनुस्यूत माना गया है। कारण यह है कि उस समय इन दोनों को अलग करने वाली कोई भी विभाजक रेखा दृष्टिगोचर नहीं होती, फिर भी अप्रत्यक्ष तत्त्वों का चिन्तन करते हुए जीवन के लक्ष्य तथा पहलुओं पर तर्क सहित विचार–विमर्श करना दर्शन एवं अपने लक्ष्य, साध्य एवं मंजिल को पाने हेतु ग्रहण किए गए विधिपूर्वक अनेक कर्मों का अनुष्ठान तथा कर्त्तव्यों का निर्वाह धर्म है। रामायण की दार्शनिक विचारधारा परवर्ती दार्शनिक चिन्तनों से हटके है क्योंकि यह किसी विशेष धारा में न बंधकर एक स्वयं में अनोखे ढ़ंग की है। यह तो वैदिक दर्शन के जैसा स्वच्छन्द, मौलिक और परम्परा निरपेक्ष वैचारिक दर्शन है। वाल्मीकि के दार्शनिक सिद्धान्त में, ईश्वर, नियति (काल), सृष्टि, उत्पत्ति, सुख–दुःख, लोक–परलोक, कर्म विचार, जन्म–मृत्यु इत्यादि दार्शनिक विषयों पर प्रकरण अनुसार चर्चा प्राप्त होती है।

ईश्वर

रामायण के विचारानुसार जगत् की प्रत्येक घटना ईश्वर के अधीन है उसकी इच्छा से सम्पन्न एवं क्रियान्वित होती है। सृष्टि का हर प्राणी ईश्वर की प्रेरणा से ही स्वकीय कार्यों में प्रवृत्त एवं निवृत्त होता है। कौशल्या के अधोलिखित इस कथन से यह स्पष्ट होता है, जब वह राम के वनवास जाने में ईश्वर को कारण बतलाती है और श्री राम को कहती है कि ईश्वर की प्रेरणा से श्री राम जैसा युगपुरुष, लोकप्रिय मनुष्य भी वन में जाने के लिए तत्पर है।

''नूनं तु बलवानलोके कृतान्तः सर्वभादिशन्।

लोके रामामि रामस्त्वं वनं यत्र गमिष्यसि।।''[2]

अयोध्या काण्ड में राम लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं कि मेरे वन गमन में और पिता जी द्वारा सौंपे गए सिंहासन का मुझ तक न पहुँचने में सब ईश्वर की ही कृपा है, अन्य किसी व्यक्ति को इसका दोष नहीं देना चाहिए। माता कैकेयी का इस प्रकार का विपरीत मनोभाव देव का ही विधान है। अगर ऐसा न होता तो वह मुझे वन भेजकर पीड़ा देने का विचार क्यों करती ? यथा –

''कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हि कथं स्यान्मम वेदने।[3]

यदि तस्या न भावोऽयं कृतान्तविहितो भवेत्।।''

इसके अलावा सब प्राणियों एवं उनके अधिष्ठाता देवताओं में भी ऐसा कोई नहीं है जो उस देव (ईश्वर) के विधान को फेर सके। सुख–दुःख, भय–क्रोध, लाभ–हानि, उत्पत्ति–विनाश इत्यादि सब परिणामों का कर्त्ता ईश्वर ही है, अर्थात् ये सब ईश्वर द्वारा निर्मित ईश्वर के ही कर्म हैं। यथा –

''सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ।

यस्य किंचित् तथाभूतं ननु देवस्यकर्मतत्।।''[4]

इस पावन पवित्र महाकाव्य में मानव के समस्त शुभ–अशुभ कर्मों को करवाने में ईश्वर अथवा देव को ही प्रमुख कारण के रूप में स्वीकृत किया है। यथा –

''न लक्ष्मणास्मिन् मम राज्यविघ्ने

माता यवीयस्यभिरांङिकतव्या

दैवाभिपन्ना न पिता कथंचि–

ज्जानामि दैवं हि तथाप्रभवम्।।''[5]

नियति

महर्षि वाल्मीकि ने काल एवं नियति को परस्पर पर्याय माना है। राम के द्वारा बालिवध कर देने पर श्री राम, तारा एवं अगंद को शोक व्याकुल देखकर समझाते हुए कहते हैं कि संसार में काल अथवा नियति ही सबकी जड़ है। वही सब घटना कर्मों का साधन है और समस्त जीवों के अनेक कार्यों का नियोक्ता है।

''नियतिः कारणम् लोके नियतिः कर्मसाधनम्।
नियतिसर्वभूतानां नियोगेष्विह कारणम्।।''[6]

धर्म, अर्थ और काम भी कालक्रम से आगत हैं। यह किसी का बंधु, सखा साथी नहीं है। यह किसी भी प्राणी के वश में नहीं होने वाला दार्शनिक पदार्थ है। इसका कोई कारण नहीं है। संसार में बीती हुई सब घटनायें होने वाली एवं हो रही सब घटनाएँ काल (नियति) के अधीन अथवा नियति का ही परिणाम समझना चाहिए।

सृष्टि

सृष्टि अथवा जगत् का उद्भव एवं विकास रामायण के समस्त दार्शनिक विषयों में एक महत्त्वपूर्ण विषय है। रामायणानुसार सृष्टि के पूर्व में ब्रह्माण्ड में केवल जल ही जल था। उस जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् इन्द्रादि अधिष्ठाता देवताओं के साथ स्वयं भू, ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। यथा –

''सर्वं सलिलमेव आसीत् पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवत् ब्रह्मा स्वम्भूर्दैवतै : सह।।''[7]

''सः वराहस्ततो भूत्वा प्रोजजहार वसुंधराम्।
अस्रजच्च जगत् सर्वं सह पुनैः कृतात्माभिः।।
आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्य अव्ययः।
तस्मान्मरिचिः संजज्ञे मरिचेः कश्यपः सुतः।।
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुवैवस्वतः स्वयम्।
स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्षवाकुस्तु मनो सुतः।।''[8]

इसके अलावा सृष्टि क्रम का उल्लेख करता हुआ काल राम से कहता है – 'अपनी माया से उत्पन्न शेषनाग पर शयन करते हुए आपने पृथ्वी उत्पन्न करने की इच्छा से महाबली मधु और कैटभ को उत्पन्न किया था। उनका वध कर आपने उनकी हड्डियों से वन और पर्वतों को उत्पन्न किया। तदन्तर आपने अपनी नाभि से सूर्य के समान कमल उत्पन्न किया और सृष्टि निर्माण का कार्य मुझे दे दिया गया।

परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक रामायण में प्रदत्त पर्वत एवं वनस्पति जगत् की उत्पत्ति करने वाली बात को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि प्रारम्भिक वनस्पति का उद्भव

जल में शैवाल के रूप में हुआ है, और पेड़–पौधे इस शैवाल का ही एक अति विकसित रूप हैं।[9] इसके अलावा हमारी भू परपट्टी 15 से 20 किलोमीटर तक ठोस अवस्था में है, इससे नीचे तापमान लगभग 1000° ब होने के कारण पृथ्वी का निचला भाग द्रव (तरल) अवस्था में विद्यमान हैं, यह लावा (द्रव) पृथ्वी के आंतरिक दबाव के कारण कभी–कभी पृथ्वी की सतह को कमजोर पाकर ऊपर की तरफ आना प्रारंभ कर देता है, ऐसा अत्यन्त गहरे जल स्थानों समुद्र आदि पर अधिक देखने को मिलता है, क्योंकि वहाँ पृथ्वी की कठोर सतह की मोटाई कम होती है, अतः गर्म लावा जल्दी बाहर आ जाता है, इस लावे के ठण्डा होने से पर्वतों का निर्माण होता है।[10]

सुख–दुःख

यदि मानव को दुःख, सन्ताप एवं पीड़ा न हो तो दर्शनशास्त्र का उद्भव ही असंभव होता अतः दुःख का विनाश करने एवं मानव के जीवन को सहज, सरल एवं विवेकी सुखमय और चिन्तनशील बनाने के लिए ही दर्शन की आवश्यकता पड़ी। इसी को स्पष्ट करते हुए ईश्वर कृष्ण कृत सांख्यकारिक जो सांख्य दर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है उसमें भी कहा गया है कि दुःखत्रय के बार–बार अभिघात (प्रहार) करने से उसके निवारण के कारणों के विषय में जिज्ञासा होती है। यथा –

''दुःखत्रयाभिघातज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।''[11]

दुःख की विपरीत दशा अथवा दुःख की निवृत्ति ही सुख है। सुख–दुःख जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह एक ऐसा भाव है जो प्रत्येक प्राणी से जुड़ा हुआ है। इस विषय में महर्षि वाल्मीकि का दर्शन कहता है कि दुःख और हताशा (निराशा) के पलों में भी मनुष्य को कोई न कोई कर्म करना चाहिए, उनका मानना है कि सब प्राणियों का जीवन संग्राम कष्टमय है, परन्तु दुःख के लिए जीवन तो समाप्त नहीं कर सकते। यथा –

''स स्वस्थो भव माशोको यात्वा चावस तां पुरीम्।
यथा पित्रा नियुक्तोऽसि वाशिनावदतां वर।।''[12]

रामायण में जीवन को क्षणभंगुर, पानी के बुलबुले के समान क्षणिक माना है और इस चिर सत्य को जानकर जीवन के लिए कभी शोक न करने की सलाह दी गई है और विचार दिया गया है कि प्राणी को हमेशा सुख प्राप्ति के साधनों की खोज करनी चाहिए और भीषण मानव जीवन को सरल एवं सुबोध बनाना चाहिए। यथा –

''शोच्या शोचसि कं शोच्यं दीनं दीनानुकम्पसे।

कश्च कस्यानुशोच्योऽस्ति देहेऽस्मिन् बुदबुदोपमे।।''[13]

सुख–दुःख, लाभ–हानि आशा–निराशा, जय–पराजय, जन्म–मृत्यु ये सब प्राणियों को समान भाव से प्राप्त होते हैं, इनसे अछूता रहना कठिन है, परन्तु बुद्धिमान् एवं धैर्यशाली पुरुष का यह धर्म है कि वह इन सब बातों से परेशान न हो बल्कि अपनी जीवन नौका को सुचारु रखे।

जन्म–मरण, आशा–निराशा

जन्म–मरण, आशा–निराशा, ये सृष्टि का विधान है। जो जागतिक घटना चक्रो के साथ निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। इस अग्रशील, गतिशील मानव जीवन में ऊँच–नीच, आशा–निराशा सागर में वायु से बनने वाली लहरों के समान आती–जाती रहती हैं। उदाहरण के रूप में जब श्री राम सीता के वियोग से संतप्त होकर पूरी सृष्टि का विनाश करने के लिए तैयार हो जाते हैं तो लक्ष्मण उनको शान्त करने के लिए कहते हैं, हे काकुत्स्थ ! स्वयं पर आये हुए इस कष्ट का निवारण यदि आप स्वयं नहीं करेगें तो, ये सांसारिक अल्पमति, अल्पबल वाले सामान्य जन कैसे करेंगे ? इसलिए हे परम पुरुष ! अपने ऊपर आये हुए इस कष्ट को सहन करो इस संकट को समाप्त करके प्रजा के समाने एक आदर्श प्रस्तुत करो। यदि आप सीता विषयक शोक से व्याकुल होकर इस प्रजा का विनाश कर देंगे तो ब्रह्माण्ड की दुःखी प्रजा कहाँ जायेगी, अर्थात् मृत्यु का ग्रास बन जायेगी। यथा –

''यदि दुःखमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ नसहिष्यसे।''[14]

एक अन्य प्रकरण में धर्मात्मा राम का आगमन सुनकर हर्ष–विभोर भरत कहते हैं ''आज यह कहावत सत्य हुई यदि मनुष्य जीवित रहे, तो सौ वर्षों के बाद भी मन को प्रसन्न कर देने वाले विषय को जानकर खुशी का अनुभव कर सकता है। यथा –

''एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि।।''[15]

इसी से मिलता–जुलता एक और दृष्टान्त रामायण में प्राप्त होता है जब सीता माता की खोजन करने में हनुमान असफल हो जाता है, तो उनके मन में प्राण त्याग ने का ख्याल आता है, परन्तु तभी उनके हृदय में एक आशा का प्रकाश पूंज प्रस्फुटित होता है, और उससे उनको प्रेरणा मिलती है कि ''मरने में तो नरे (बहुत गणे) दोष हैं, इसकी अपेक्षा यदि मैं जीवित रहा तो कभी न कभी माता सीता का अन्वेषण कर ही लूँगा, अतः प्राण धारण करने का दृढ़ निश्चय कर लेता है। यथा –

''विनाशो बहवो दोषा जीवन प्राप्नोति भद्रकम्।
तस्मात् प्राणान् धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः।।[16]

कर्म

महर्षि वाल्मीकि ने शोक विहल मानव को शोक त्याग कर सुख हेतु कर्म करने का सन्देश दिया है। एक स्थान पर श्री राम सुग्रीव को अपनी विनाशकारी मति का परित्याग करके विवेकी मनुष्य की तरह अपनी बुद्धि, अपने सामर्थ्य से शुभ कर्म करने के लिए उत्साहित करते हुए उपदेश देते हैं, ''जो मनुष्य उत्साह हीन, दयनीय और शोक युक्त होकर रहता है। उसके वांछित सारे काम विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, और वह काल का ग्रास बन जाता है।

''निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वर्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति।।''[17]

रामायण में और भी अनेक ऐसे उदाहरण मिल जाएंगे जिनमें कर्म के महत्त्व पर बल दिया गया है। अगम्य विशाल समुद्र को देखकर सीता अन्वेषण में हताश हुए वानरों को धैर्य बँधाते हुए युवराज अगंद कहते हैं – ''हे वीर वानरो ! तुम अपने हृदय में विषाद उत्पन्न मत करो, क्योंकि इसमें अनेक दोष होते हैं, जिस प्रकार क्रोधी साँप

अपने पास आए हुए बालक को काट लेता है, उसी प्रकार यह विषाद भी वीर से वीर पुरुष को भी कुछ ही क्षणों में निगल जाता है और जो व्यक्ति पराक्रम के समय विषादग्रस्त हो जाता है, वह तेजहीन हो जाता है तथा उसका कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता। यथा –

यो विषादं प्रसहते विक्रमे समुपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिद्धयति।।[18]

इन सब घटनाओं से स्पष्ट होता है कि रामायण में जीवन के प्रति निराशा के विरुद्ध आशा, निरुत्साह के विरुद्ध उत्साह विनाश के विरुद्ध जीवन को कर्म की प्रबलता से नवाजा है, जो सदियों से हमारी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को अलंकृत कर रहा है।

उपसंहारः

अन्त में निष्कर्ष रूप में माना जा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा विवेचित दर्शन एक सुगम, सहज एवं सुबोध दर्शन है। इसमें किसी भी सम्प्रदाय विशेष की अवधारणायें तार्किक दृष्टि से प्रतिपादित नहीं है। यह एक ऐसे धर्मप्रिय समाज एवं जन सामान्य से सम्बन्धित दर्शन है जिसमें आने वाले ईश्वर, नियति, काल, दैव, सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु, आशा–निराशा तथा प्रारब्ध आदि दार्शनिक व चिन्तनीय विषय एक–दूसरे में इस तरह से मिले हुए हैं, जैसे दूध में पानी, ऐसे परस्पर गुथे हुए अनेक प्रसंगों में एक को अन्यों से भिन्न करना महत् परिश्रम से साध्य है। लेख के सार को संक्षिप्त करते हुए अन्त में यह बात कहकर विराम करुँगा। संसार में जब तक पर्वत, पहाड़, नदी, झरने, ये सब प्रकृति द्वारा निर्मित वस्तुएँ विद्यमान रहेंगी तब तक कर्णामृत प्रदान करने वाली इस पावन, पवित्र आदिमहाकाव्य का पठन–पाठन विधिवत् होता रहेगा। यथा –

''यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावत् रम्या रामायणी कथा लोकेषु परिचरिष्यति।।''[19]

सन्दर्भ ग्रन्थः

[1] वाल्मीकि रामायण – 1.2.15
[2] वही, 2.24.05
[3] वही, 2.22.16
[4] वही, 2.22.22
[5] वही, 2.22.30
[6] वही, 4.25.4
[7] वही, 2.110.3–6
[8] वही, 7.104.3–6
[9] एन० सी० ई० आर० टी० पुस्तक कक्षा ग्यारहवीं, अध्याय–4

[10] भूगर्भीय विज्ञान, सविन्द्र सिंह, पृ० 225
[11] सांख्यकारिका, ईश्वर कृष्ण, कारिका–1
[12] वाल्मीकि रामायण – 2.105.40
[13] वही, 4.21.3
[14] वही, 3.66.5
[15] वही, 6.126.2
[16] वही, 5.63.47
[17] वही, 6.2.6
[18] वही, 4.64.10
[19] वही, 1.2.36